

श्रीमद्भागवत तृतीय स्कन्ध अध्याय २६: महत्तत्त्व की उत्पत्ति

13 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



पुरुष और प्रकृति के मिलन से महत्तत्त्व प्रकट होता है — दीप्तिमान और विशाल — ब्रह्मांडीय बुद्धि का वह प्रथम सिद्धांत, जिससे मन, अहंकार, तत्त्व और प्रत्येक इन्द्रिय क्रमबद्ध रूप से प्रकट होते हैं, यहाँ तक कि कारण-जल से विराट पुरुष स्वयं प्रकट हो उठते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवत विज्जम में आपका स्वागत है, जो श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिमय यात्रा है। पच्चीसवाँ अध्याय भगवान कपिल द्वारा भक्ति की महिमा के वर्णन के साथ समाप्त हुआ था — सिद्ध योगी की भगवान में तल्लीनता, और यह सत्य कि “जन्म-मृत्यु के भयंकर भय” से बचने के लिए भगवान के अतिरिक्त और कोई शरण नहीं है। अब छब्बीसवाँ अध्याय उस भक्तिमय ऊँचाई से

एक अधिक सूक्ष्म, किन्तु अपने ढंग से उतने ही अद्भुत विषय की ओर मुड़ता है: यह विस्तार से बताता है कि भौतिक ब्रह्मांड कैसे अस्तित्व में आता है। देवहूति अपने दिव्य पुत्र से एक सीधा प्रश्न पूछती हैं — प्रकृति और पुरुष, इस ब्रह्मांड के दो कारण, वास्तव में क्या हैं? — और कपिल का उत्तर शेष सम्पूर्ण अध्याय को भर देता है। वे सांख्य दर्शन की सम्पूर्ण संरचना को श्रेणी-दर-श्रेणी खोलते हैं: प्रकृति के चौबीस विकार, उसकी विक्षुब्ध साम्यावस्था से उत्पन्न महत्तत्त्व, उस ब्रह्मांडीय बुद्धि से उत्पन्न त्रिविध अहंकार, अहंकार से क्रमबद्ध रूप से प्रवाहित होने वाले पाँच सूक्ष्म और स्थूल तत्त्व, और अंततः ब्रह्माण्ड तथा विराट पुरुष का जन्म — जिनके अंग, इन्द्रियाँ और अधिष्ठाता देवता एक-एक करके प्रकट होते हैं, फिर भी वे तब तक निश्चल और अजाग्रत रहते हैं जब तक कि उन्हें जगाने में सक्षम एकमात्र तत्त्व — हृदय में स्थित अन्तर्यामी — अंत में प्रवेश नहीं करता। यह सूचियों और सम्बन्धों से भरा अध्याय है, हाँ — किन्तु यहाँ की प्रत्येक सूची एक ही, शांत किन्तु चौंका देने वाले निष्कर्ष की ओर संकेत करती है: वही अन्तर्यामी जिसने सृष्टि के प्रारम्भ में सोए हुए ब्रह्मांड को अकेले जगाया, इस क्षण भी पाठक के हृदय में विराजमान है।

अध्याय की जानकारी

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: ३ (तृतीय स्कन्ध)
- अध्याय: २६ (प्रवचन २६)
- अध्याय शीर्षक: महत्तत्त्व एवं अन्य मूल तत्त्वों की उत्पत्ति की प्रक्रिया
- मुख्य वक्ता: भगवान कपिल, सीधे देवहूति को सम्बोधित करते हुए (पूर्व अध्यायों में स्थापित मैत्रेय द्वारा विदुर को कथा-वर्णन के बाहरी ढाँचे के भीतर)
- मुख्य श्रोता: देवहूति, जो एक बार एकल प्रश्न के साथ हस्तक्षेप करती हैं (श्लोक ९)
- मुख्य स्थान: कर्दम का आश्रम, अध्याय २४ में आरम्भ हुई शिक्षा की निरंतरता में
- केंद्रीय विषय: ब्रह्मांडीय विकास का सांख्य दार्शनिक विवरण — पुरुष और प्रकृति, चौबीस श्रेणियाँ (तत्त्व) और पच्चीसवें के रूप में काल, महत्तत्त्व एवं त्रिविध अहंकार की उत्पत्ति, पाँच सूक्ष्म तत्त्वों (तन्मात्राओं) का पाँच स्थूल तत्त्वों और इन्द्रियों में क्रमबद्ध विकास, तथा ब्रह्माण्ड और विराट पुरुष की रचना, जिनके अंगों और देवताओं से भी तब तक जागृति नहीं होती जब तक अन्तर्यामी स्वयं सफल नहीं होते
- मुख्य श्लोक सीमा: तृतीय स्कन्ध, अध्याय २६, श्लोक १-७२
- प्राथमिक संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

“विभिन्न श्रेणियों के विशिष्ट लक्षण”

अध्याय ठीक वहीं से आरम्भ होता है जहाँ कपिल की भक्ति सम्बन्धी शिक्षा समाप्त हुई थी, और अब वे देवहूति को एक भिन्न, पूरक ज्ञान देने का वचन देते हैं।

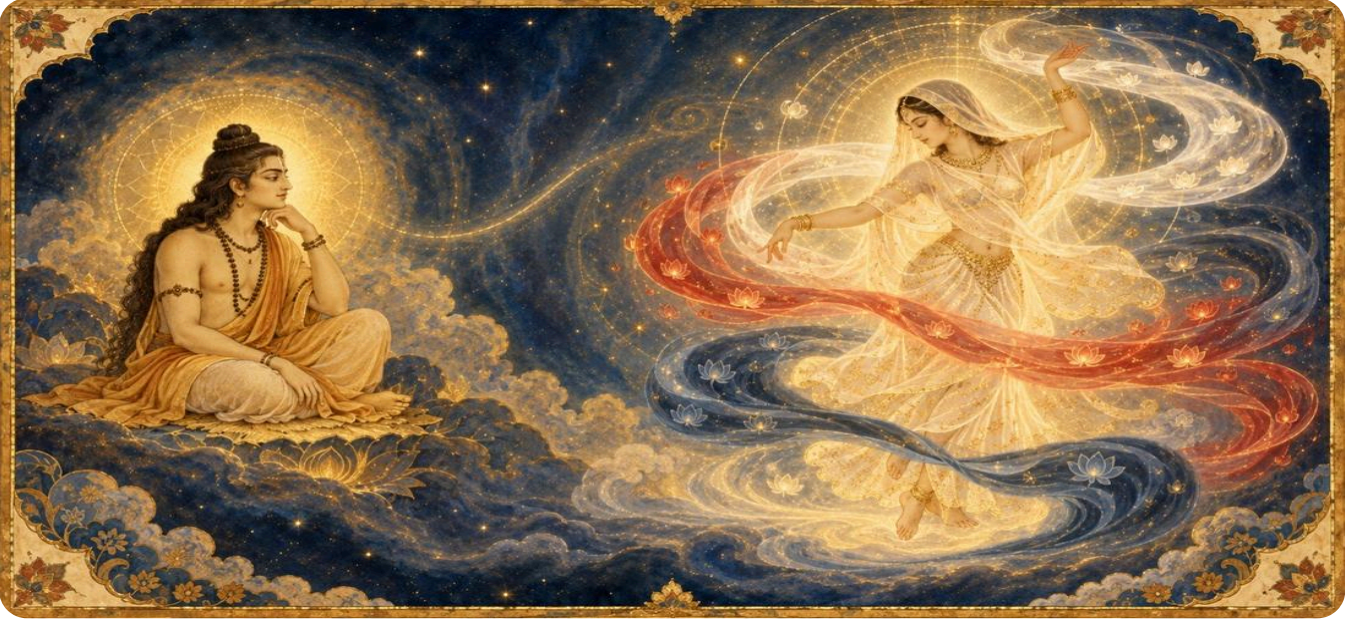
भगवान ने आगे कहा: “अब मैं तुम्हें एक-एक करके विभिन्न श्रेणियों के विशिष्ट लक्षण बताऊँगा, जिन्हें जानकर मनुष्य सदा के लिए प्रकृति के गुणों के बंधन से मुक्त हो जाता है। मैं तुम्हें आत्म-साक्षात्कार के रूप में ज्ञान की प्रकृति भी बताऊँगा, जो हृदय में स्थित अहंकार की गाँठ को काटकर जीव को अंतिम मुक्ति की ओर ले जाता है: ऐसा ज्ञानीजन कहते हैं।” (श्लोक १-२)

इसके बाद जो आता है वह भावना के रूप में भक्ति नहीं है, बल्कि समझ के रूप में भक्ति है — आत्मा को बाँधने वाली वस्तु का एक स्पष्ट मानचित्र, ताकि आत्मा अपनी ही बेड़ियों को पहचान सके और पहचानकर मुक्त हो सके। कपिल उस मूल सम्बन्ध से आरम्भ करते हैं जिससे समस्त बंधन प्रवाहित होता है: पुरुष, आत्मा, और प्रकृति, पदार्थ के बीच का सम्बन्ध।

पुरुष आत्मा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, जो अनादि है, गुणरहित है, प्रकृति से परे विद्यमान है, समस्त प्राणियों के हृदय में प्रकट है, और स्वयंप्रकाशित है — जिससे व्याप्त होकर यह ब्रह्मांड हमें दिखाई देता है। (श्लोक ३) इस सर्वव्यापी पुरुष ने अपनी स्वेच्छा से त्रिगुणमयी, अव्यक्त दिव्य प्रकृति को स्वीकार किया, जो अपनी क्रीड़ा में उसकी खोज कर रही थी। (श्लोक ४) यहाँ से कपिल का वर्णन पुरुष के अपने अस्पृशित स्वभाव से हटकर उन असंख्य देहधारी जीवों की ओर मुड़ता है जो उसी आत्मिक सत्ता को साझा तो करते हैं, पर उसकी स्वतंत्रता को नहीं: प्रकृति में पहले से ही निवास करते हुए, ऐसा पुरुष (जीव) उसके आकर्षण का शिकार हो गया, जो ज्ञान को धुंधला कर देती है, और जिस क्षण उसने उसे अपने गुणों — सत्त्व, रजस और तमस — द्वारा विविध रूपों वाली संतानों के रूप में विकसित होते देखा, उसी क्षण वह अपने आप को भूल बैठा। (श्लोक ५) प्रकृति के साथ, जो उससे भिन्न है, स्वयं को समान समझकर, वह प्रकृति के गुणों द्वारा किए गए कर्मों के कर्तृत्व का श्रेय स्वयं को देने लगता है। (श्लोक ६) यह कर्तृत्व की भावना ही है जो उसे कर्मों में बाँधती है, यद्यपि वास्तव में वह मात्र साक्षी है और इसलिए अकर्ता है; और यह कर्म द्वारा उत्पन्न बंधन ही उसे असहाय बनाता है, यद्यपि वह वास्तव में स्वतंत्र है, और उसे बार-बार जन्म-मृत्यु के अधीन करता है, यद्यपि वह स्वभाव से आनंदमय है। (श्लोक ७) सत्य को जानने वाले प्रकृति को ही आत्मा की देह, इन्द्रियों और मन के साथ पहचान के लिए उत्तरदायी मानते हैं; सुख-दुःख के अनुभव के लिए वे इस बद्ध पुरुष को — जो स्वयं को प्रकृति से पहचानता है — उत्तरदायी मानते हैं, यद्यपि वास्तव में वह प्रकृति से परे है। (श्लोक ८)

आगे बढ़ने से पहले इस विवरण की सरलता पर रुककर विचार करना उचित होगा, क्योंकि यह शास्त्रों में बंधन का सबसे संक्षिप्त वर्णनों में से एक है: देहधारी पुरुष के साथ कुछ भी नहीं किया जाता। वह स्वयं को भूल जाता है; वह दूसरे के कर्मों को अपना मान लेता है; और उसी एक भ्रांत पहचान से सुख, दुःख, जन्म और मृत्यु का समस्त अनुभव प्रवाहित होता है। निहितार्थ यह है कि उपाय परिस्थिति में परिवर्तन नहीं, बल्कि पहचान का सुधार है।

यह भेद — श्लोक ३-४ में पुरुष की दिव्य, अस्पृशित स्वतंत्रता, और श्लोक ५ से आगे देहधारी जीव का वास्तविक बंधन — एक ऐसा सैद्धांतिक महत्त्व रखता है जिसे कपिल देवहूति से छिपाना नहीं चाहते। दोनों का मिलन चाहे जितनी क्रीड़ामयता से वर्णित हो, वह मिलन स्वयं भगवान को कभी स्पर्श नहीं करता; केवल वे असंख्य जीव, जो प्रकृति के भीतर स्वयं को भूल बैठते हैं, ही इसके परिणाम भोगते हैं। यह मान लेना एक गम्भीर भूल होगी कि दोनों के लिए प्रयुक्त एक ही संस्कृत शब्द “पुरुष” के कारण, भगवान की दिव्य लीला और बद्ध जीव की विस्मृति एक ही अनुभव के दो मुखौटे मात्र हैं। ऐसा नहीं है। एक स्वेच्छा से स्वीकार किया जाता है और कभी बाँधता नहीं; दूसरा अनजाने में स्वीकार होता है और मृत्यु तथा पुनर्जन्म के अधीन पूर्णतः बाँध देता है, जब तक ज्ञान उस गाँठ को न काट दे। इस अध्याय की सम्पूर्ण शिक्षा का बल इसी भेद को स्पष्ट रूप से देखते रहने पर टिका है।



सर्वव्यापी पुरुष, जो त्रिगुणों के माध्यम से प्रकृति की क्रीड़ात्मक अभिव्यक्ति को देखते ही अपने सच्चे स्वभाव को भूल जाता है, उसके कर्मों को अपना समझने लगता है — यही इस अध्याय के आरम्भिक श्लोकों में वर्णित समस्त बंधन का मूल है (श्लोक ३-८)।

देवहूति का प्रश्न और चौबीस श्रेणियाँ

बंधन के इस मूल विवरण को सुनने के पश्चात्, देवहूति वह प्रश्न पूछती हैं जो शेष अध्याय को खोलता है।

देवहूति ने कहा: “हे परमपुरुष, कृपया मुझे भी प्रकृति और पुरुष के लक्षण बताइए, जो इस ब्रह्मांड के दो कारण हैं, जो अपने स्थूल और सूक्ष्म रूपों में इन्हीं दोनों की अभिव्यक्ति मात्र है।” (श्लोक ९)

कपिल का उत्तर एक औपचारिक परिभाषा से आरम्भ होता है और फिर, एक सच्चे गुरु के धैर्य के साथ, हर एक श्रेणी की गणना करता है।

ज्ञानीजन प्रधान (मूल पदार्थ) को प्रकृति कहते हैं — जो त्रिगुणमयी है, अव्यक्त और नित्य है, कारण और कार्य दोनों रूपों में विद्यमान है, और अपनी कारण-अवस्था में अभेद होते हुए भी महत्तत्त्व जैसी विशिष्ट श्रेणियों का स्रोत है। (श्लोक १०) चौबीस श्रेणियों का समूह — पाँच स्थूल तत्त्व, पाँच सूक्ष्म तत्त्व, चार अन्तःकरण, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ — प्रधान का विकार माना जाता है। (श्लोक ११) स्थूल तत्त्व पाँच ही हैं: पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश; सूक्ष्म तत्त्व भी उतने ही हैं: गंध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द। (श्लोक १२) इन्द्रियाँ दस हैं: श्रवण, स्पर्श, दृष्टि, स्वाद, गंध की इन्द्रियाँ, वाणी, हाथ, पैर, जननेन्द्रिय और मलोत्सर्जन की इन्द्रिय। (श्लोक १३) अन्तःकरण के चार पक्ष हैं — मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त — जो अपने-अपने कार्यों से पहचाने जाते हैं। (श्लोक १४) यही चौबीस तत्त्वों से युक्त सांसारिक ब्रह्म की सम्पूर्ण संरचना है, और काल इसका पच्चीसवाँ तत्त्व है। (श्लोक १५)

काल पर विशेष ध्यान देने योग्य है, क्योंकि कपिल इसके बारे में एक विशिष्ट बात सावधानीपूर्वक कहते हैं: कुछ लोग काल को पुरुष की विनाशकारी शक्ति कहते हैं, जो प्रकृति से जुड़े और अहंकार से मोहित जीव को भय उत्पन्न करती है (श्लोक १६); किन्तु वास्तव में, प्रकृति को सक्रिय करने वाले भगवान स्वयं — जो त्रिगुणों की साम्यावस्था हैं, जिसमें कोई विशेष नाम या रूप नहीं होता — काल कहलाते हैं। (श्लोक १७) इस प्रकार भगवान अपनी माया द्वारा समस्त प्राणियों के भीतर पुरुष (अन्तर्यामी) के रूप में और बाहर काल के रूप में — पच्चीसवीं श्रेणी — अप्रभावित रहते हैं। (श्लोक १८) दूसरे शब्दों में, काल भगवान के साथ चलने वाली कोई पृथक् ब्रह्मांडीय शक्ति नहीं है; यह सृष्ट संसार के साथ भगवान का ही एक और रूप है।

इन पच्चीस श्रेणियों को स्मरण में रखने के लिए, जैसे-जैसे कपिल का विवरण शेष अध्याय में आगे बढ़ता है, उन्हें इस प्रकार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है:

क्र.	श्रेणी (संस्कृत / हिन्दी)	स्वभाव
१	प्रधान / प्रकृति	अव्यक्त मूल पदार्थ, समस्त विकारों का स्रोत
२-५	चार अन्तःकरण: मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त	अनुभूति के सूक्ष्म साधन
६-१०	पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ: श्रवण, स्पर्श, दृष्टि, स्वाद, गंध	ज्ञान प्राप्ति के साधन
११-१५	पाँच कर्मेन्द्रियाँ: वाणी, हाथ, पैर, जनन, मलोत्सर्जन	कर्म के साधन
१६-२०	पाँच तन्मात्राएँ: शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध	स्थूल तत्त्वों के मूल सूक्ष्म सार
२१-२५	पाँच स्थूल तत्त्व (महाभूत): आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी	प्रकट भौतिक तत्त्व
२५वाँ	काल	भगवान की अपनी शक्ति, पच्चीसवीं श्रेणी, जो भीतर पुरुष के रूप में और बाहर काल के रूप में कार्य करती है



प्रकृति की चौबीस श्रेणियाँ — मन, अहंकार, चित्त, ज्ञान और कर्म की इन्द्रियाँ, सूक्ष्म और स्थूल तत्त्व — तथा पच्चीसवें के रूप में काल, मिलकर उस भौतिक सृष्टि की सम्पूर्ण संरचना बनाते हैं जिसे कपिल अब अपनी माता के लिए प्रकट कर रहे हैं (श्लोक १०-१८)।

महत्तत्त्व की उत्पत्ति

श्रेणियों की गणना के पश्चात्, कपिल अब उनकी वास्तविक उत्पत्ति-क्रम का वर्णन करते हैं — प्रकृति के प्रथम विकार, महत्तत्त्व, ब्रह्मांडीय बुद्धि के सिद्धांत से आरम्भ करते हुए।

जब परमपुरुष ने अपनी शक्ति — चित्-शक्ति, बुद्धि की शक्ति — को अपनी माया में स्थापित किया, जो समस्त सृष्ट प्राणियों का स्रोत है, जिसके गुणों की साम्यावस्था विभिन्न जीवों के भाग्य से विक्षुब्ध हो चुकी थी, तब माया ने प्रकाश से पूर्ण महत्तत्त्व को जन्म दिया। (श्लोक १९) महत्तत्त्व, जो न तो सुस्ती जानता था न विक्षेप, और जो ब्रह्मांड के वृक्ष की कोंपल था, उसने प्रलय काल के गहन अंधकार को — जो कभी उसे ही निगल गया था — अपनी ही दीप्ति से पी लिया, ताकि उस ब्रह्मांड को प्रकट किया जा सके जो उसके भीतर सूक्ष्म रूप में विद्यमान था। (श्लोक २०)

कपिल तब महत्तत्त्व को केवल एक अमूर्त ब्रह्मांडीय सिद्धांत के रूप में ही नहीं, बल्कि भगवान के अपने रूपों की वैष्णव परम्परा में एक नाम और स्वरूप वाली वस्तु के रूप में पहचानते हैं।

चित्त — बुद्धि की क्षमता, जो सत्त्व गुण से परिपूर्ण है, शुद्ध है, वासना से रहित है, और वह स्थान है जहाँ भगवान का साक्षात्कार किया जा सकता है — महत्तत्त्व कहलाती है और इसे वासुदेव के नाम से भी पुकारा जाता है, क्योंकि इसी ब्रह्मांडीय चित्त के माध्यम से भगवान के चार रूपों में सर्वप्रथम वासुदेव की उपासना की जाती है। (श्लोक २१) जिस प्रकार जल अपनी प्राकृतिक अवस्था में, पृथ्वी आदि के संपर्क में आने से पहले, स्वच्छ, मधुर और अशांत नहीं होता, उसी प्रकार पारदर्शिता, विक्षेप से मुक्ति और शांति चित्त के विशिष्ट लक्षण माने जाते हैं। (श्लोक २२)

महत्तत्त्व की वासुदेव के साथ यह पहचान इस अध्याय में उस पद्धति का प्रथम प्रकटीकरण है जो कपिल के शेष विवरण में बार-बार दोहराई जाएगी: प्रकृति का प्रत्येक प्रमुख विकार पांचरात्र परम्परा में मान्यता प्राप्त भगवान के चार रूपों (व्यूहों) में से एक के साथ मेल खाता है — वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध — जिससे पदार्थ का विकास कभी भी, अपनी सबसे तकनीकी अवस्था में भी, उस पदार्थ के भीतर भगवान की अपनी उपस्थिति से पृथक् नहीं रहता।

त्रिविध अहंकार और उसके प्रथम विकार

महत्तत्त्व से अगला महान तत्त्व प्रकट होता है: अहंकार, जिसे कपिल उसके जन्म के क्षण से ही त्रिविध बताते हैं।

महत्तत्त्व से, जो भगवान की अपनी चित्-शक्ति से विकसित हुआ था, परिवर्तित होते हुए, अहंकार प्रकट हुआ, जो प्रमुख रूप से सक्रिय शक्ति से युक्त है और तीन प्रकार का है — सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। इन तीन प्रकारों से क्रमशः मन, इन्द्रियाँ और स्थूल तत्त्व विकसित हुए। (श्लोक २३-२४) यह त्रिविध अहंकार — स्थूल तत्त्वों, इन्द्रियों और मन का स्रोत होने के कारण, तथा उनके साथ कारण के रूप में एकरूप — वही पुरुष है जिसे संकर्षण कहा जाता है, जिन्हें वैष्णव सहस्र-मस्तक अनन्त भगवान के अतिरिक्त और कुछ नहीं मानते। (श्लोक २५) अहंकार को कर्ता, साधन और कार्य के रूप में चित्रित किया जाता है, तथा इसे सात्त्विक, राजसिक या तामसिक स्वभाव के अनुसार शांत, सक्रिय या जड़ बताया जाता है। (श्लोक २६)

तीन प्रकार के अहंकार में से प्रत्येक अपनी विशिष्ट विकार-शृंखला उत्पन्न करता है। सात्त्विक (वैकारिक) अहंकार से मन उत्पन्न होता है, जिसके विचार और चिंतन इच्छा को जन्म देते हैं — और यही मन भगवान अनिरुद्ध के नाम से जाना जाता है, इन्द्रियों के परम अधिपति, शरद ऋतु के नील कमल के समान श्याम वर्ण वाले, जिन्हें योगीजन धीरे-धीरे प्राप्त करते हैं। (श्लोक २७-२८) राजसिक अहंकार से बुद्धि उत्पन्न होती है, हे साध्वी — जिसके कार्य हैं वस्तुओं के स्वरूप का निश्चय करना और इन्द्रियों को वस्तुओं की अनुभूति में सहायता करना — और यह बुद्धि भगवान प्रद्युम्न, भगवान के तीसरे रूप, के नाम से जानी जाती है; इसके लक्षण हैं संशय, भ्रम, सम्यक् ज्ञान, स्मृति और निद्रा। (श्लोक २९-३०) ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ दोनों भी राजसिक (तैजस) अहंकार के ही विकार हैं, क्योंकि कर्म की शक्ति प्राण में और अनुभूति की शक्ति बुद्धि में निहित है, और ये दोनों उसी तैजस अहंकार के विकार हैं। (श्लोक ३१)

भगवान के चारों व्यूह-रूपों की ब्रह्मांडीय बुद्धि के क्रमिक सिद्धांतों के साथ इस पहचान को नीचे सारणीबद्ध किया गया है, जो शेष अध्याय की अधिक तकनीकी व्याख्या का अनुसरण करने में पाठकों के लिए उपयोगी हो सकती है:

ब्रह्मांडीय सिद्धांत	गुण	भगवान का पहचाना गया व्यूह-रूप	श्लोक
महत्तत्त्व (चित्त)	सत्त्व-प्रधान	वासुदेव	२१
अहंकार (त्रिविध, नीचे के तीनों का स्रोत)	तीनों गुण	संकर्षण	२५
मन (सात्त्विक अहंकार से)	सत्त्व	अनिरुद्ध	२७-२८
बुद्धि (राजसिक अहंकार से)	रजस	प्रद्युम्न	२९-३०



महत्तत्त्व से त्रिविध अहंकार प्रकट होता है, और उसके तीन रूपों से क्रमशः मन और बुद्धि उत्पन्न होते हैं — ब्रह्मांडीय बुद्धि के प्रत्येक सिद्धांत को कपिल भगवान के अपने चार शाश्वत रूपों — वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध — में से एक के साथ पहचानते हैं (श्लोक २१-३१)।

पाँच तन्मात्राएँ: शब्द से पृथ्वी तक

अध्याय का सबसे लम्बा और सबसे व्यवस्थित अंश अब आरम्भ होता है: पाँच सूक्ष्म तत्त्वों (तन्मात्राओं) की क्रमिक उत्पत्ति, तथा प्रत्येक से उसके संगत स्थूल तत्त्व और अनुभूति की इन्द्रिय की उत्पत्ति। यह प्रक्रिया तामसिक अहंकार द्वारा आरम्भ होती है।

तामसिक अहंकार से, भगवान की अपनी चित्-शक्ति से प्रेरित होकर, शब्द तत्त्व उत्पन्न हुआ; और शब्द से आकाश तथा शब्द ग्रहण करने वाली श्रवण इन्द्रिय विकसित हुई। (श्लोक ३२) शब्द को उस रूप में परिभाषित किया जाता है जो अदृश्य वस्तु का बोध कराता है, दृष्टि से ओझल वक्ता की उपस्थिति सूचित करता है, और आकाश का सूक्ष्म रूप है; तथा आकाश स्वयं वह है जो प्राणियों को स्थान देता है, भीतर-बाहर की धारणाओं को जन्म देता है, और प्राण, इन्द्रियों तथा मन का निवास स्थान है। (श्लोक ३३-३४)

आकाश से, काल के प्रभाव में, स्पर्श तत्त्व उत्पन्न हुआ और उससे वायु तथा स्पर्श की इन्द्रिय। कोमलता, कठोरता, शीत और उष्णता स्पर्श के विशिष्ट लक्षण हैं, और यह वायु का सूक्ष्म रूप है; जबकि वायु स्वयं हिलाने, एकत्र करने, सर्वत्र पहुँचने, गंध आदि को इन्द्रियों तक पहुँचाने, और समस्त इन्द्रियों को बल तथा जीवनी शक्ति प्रदान करने में समर्थ है। (श्लोक ३५-३७)

वायु से, विभिन्न जीवों के भाग्य से प्रेरित होकर, रूप तत्त्व उत्पन्न हुआ और उससे अग्नि तथा दृष्टि की इन्द्रिय। जिस पदार्थ में यह निहित है उसी के रूप में प्रकट होना, उस पदार्थ पर निर्भर रहना, और अग्नि के आवश्यक स्वभाव का निर्माण करना — ये रूप के कार्य हैं; जबकि अग्नि स्वयं प्रकाश देती है, भोजन पकाती और पचाती है, शीत को नष्ट करती है, नमी को सुखाती है, और भूख-प्यास को जन्म देती है। (श्लोक ३८-४०)

अग्नि से रस तत्त्व उत्पन्न हुआ और उससे जल तथा स्वाद की इन्द्रिय। रस, यद्यपि मूलतः एक है, अन्य पदार्थों के संपर्क से कषाय, मधुर, कटु, तीक्ष्ण, अम्ल और लवण के रूप में विविध हो जाता है; जबकि जल भिगोता है, संयोजन उत्पन्न करता है, संतुष्ट करता है, जीवन को बनाए रखता है, प्यास बुझाकर ताज़गी देता है, और वस्तुओं को नरम बनाता है। (श्लोक ४१-४३)

जल से गंध तत्त्व उत्पन्न हुआ और उससे पृथ्वी तथा गंध की इन्द्रिय। गंध भी अनेक हो जाती है — मिश्रित, दुर्गन्धित, सुगन्धित, मृदु, तीव्र, अम्लीय — संयुक्त पदार्थों के अनुपात के अनुसार; जबकि पृथ्वी अनंत की संकल्पना को रूप देती है, अपनी स्थिति बनाए रखती है, अन्य पदार्थों को धारण करती है, असीमित स्थान को सीमित करती है, और समस्त प्राणियों के शरीर तथा विशिष्ट गुणों को प्रकट करती है। (श्लोक ४४-४६)

कपिल इस क्रम को इस सारांश के साथ समाप्त करते हैं कि पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ अपने-अपने संगत तत्त्व के गुण से कैसे परिभाषित होती हैं — शब्द श्रवण के लिए, स्पर्श स्पर्शेन्द्रिय के लिए, रूप दृष्टि के लिए, रस स्वाद के लिए, और गंध घ्राण के लिए (श्लोक ४७-४८) — तथा एक विस्मयकारी अंतिम अवलोकन के साथ: चूँकि कारण अपने कार्य में भी विद्यमान रहता है, प्रत्येक पूर्ववर्ती तत्त्व के लक्षण उसके अनुगामी तत्त्व में भी पाए जाते हैं, यही कारण है कि समस्त तत्त्वों के गुण अंततः केवल पृथ्वी में ही पाए जाते हैं। (श्लोक ४९) पृथ्वी, तत्त्वों में अंतिम और सबसे स्थूल, इसी अर्थ में सबसे परिपूर्ण भी है — अपने भीतर शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध के उन समस्त गुणों को धारण किए हुए जिन्हें उससे पूर्ववर्ती तत्त्वों ने एक-एक करके प्रस्तुत किया था।

पूर्ण उत्पत्ति-क्रम, तन्मात्रा-दर-तन्मात्रा, इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है:

तन्मात्रा (सूक्ष्म तत्त्व)	उत्पन्न स्थूल तत्त्व	अनुभूति की इन्द्रिय	श्लोक
शब्द	आकाश	श्रवण	३२-३४
स्पर्श	वायु	स्पर्शेन्द्रिय	३५-३७
रूप	अग्नि	दृष्टि	३८-४०
रस	जल	स्वाद	४१-४३
गंध	पृथ्वी	घ्राण	४४-४६



अटूट क्रम में, शब्द से आकाश और श्रवण, स्पर्श से वायु और स्पर्शेन्द्रिय, रूप से अग्नि और दृष्टि, रस से जल और स्वाद, तथा गंध से पृथ्वी और घ्राण उत्पन्न होते हैं — प्रत्येक गुण अगले तत्त्व द्वारा विरासत में लिया जाता है, इस प्रकार पृथ्वी अकेले ही उन सभी के गुणों को समाहित कर लेती है (श्लोक ३२-४९)।

ब्रह्माण्ड और विराट पुरुष

चौबीस श्रेणियों की पूर्ण व्युत्पत्ति के पश्चात्, कपिल अब इस ओर मुड़ते हैं कि वे कैसे मिलकर दृश्य ब्रह्मांड और उसके भीतर विशाल ब्रह्मांडीय रूप का निर्माण करते हैं।

जब महत्तत्त्व, अहंकार और पाँच स्थूल तत्त्व — ये सात — असंयुक्त अवस्था में थे, भगवान नारायण ने काल, विभिन्न जीवों के भाग्य और गुणों को साथ लेकर उनमें प्रवेश किया। (श्लोक ५०) इन सात तत्त्वों से, भगवान की उपस्थिति द्वारा सक्रिय और संयुक्त होकर, एक अचेतन अंड उत्पन्न हुआ, जिससे प्रसिद्ध विराट पुरुष प्रकट हुए। (श्लोक ५१) यह अंड, जो विशेष नाम से जाना जाता है, चारों ओर से जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहंकार और महत्तत्त्व की परतों से घिरा हुआ है — प्रत्येक अपने से घिरे तत्त्व से दस गुना बड़ी, और इन छहों को अंततः प्रधान की बाहरी परत घेरे हुए है। श्रीहरि की अभिव्यक्ति स्वरूप समस्त चौदह लोक इस अंड के भीतर फैले हुए हैं। (श्लोक ५२) कारण-जल पर स्थित उस देदीप्यमान अंड के प्रति उदासीनता त्यागकर, विराट पुरुष ने उस पर अधिष्ठित होकर उससे विभिन्न इन्द्रियों के स्थान प्रकट किए। (श्लोक ५३)

आगे जो आता है वह भागवत के इस अंश के सबसे सजीव प्रसंगों में से एक है: विराट पुरुष के अपने शारीरिक अंगों का क्रमिक प्रकटीकरण, प्रत्येक के साथ तत्काल उसका अधिष्ठाता देवता।

सर्वप्रथम मुख प्रकट हुआ, और उससे वाणी की इन्द्रिय तथा उसके अधिष्ठाता देवता अग्निदेव प्रकट हुए। फिर नासिका का जोड़ा प्रकट हुआ, उसमें घ्राण के साथ घ्राण इन्द्रिय; और उसके पश्चात् वायुदेव। फिर नेत्रों का जोड़ा और दृष्टि इन्द्रिय प्रकट हुई, जिसके पश्चात् सूर्यदेव आए; फिर कानों का जोड़ा और श्रवण इन्द्रिय, जिसके पश्चात् दिशाओं के अधिष्ठाता दिग्देवता आए। (श्लोक ५४-५५) फिर त्वचा, शरीर और सिर के बाल, मूँछ और दाढ़ी प्रकट हुए — जिसके पश्चात् औषधियाँ और वार्षिक वनस्पतियाँ अधिष्ठाता देवता के रूप में आई — और फिर जननेन्द्रिय प्रकट हुई। (श्लोक ५६) उसमें प्रजनन शक्ति प्रकट हुई, जिसके पश्चात् जल के अधिष्ठाता देवता आए। फिर गुदा प्रकट हुआ और उसमें मलोत्सर्जन इन्द्रिय, जिसके पश्चात् संसार के भयानक मृत्युदेव आए। (श्लोक ५७) फिर हाथों का जोड़ा प्रकट हुआ, उनमें ग्रहण करने की शक्ति के साथ, जिसके पश्चात् इन्द्र आए; तथा पैरों का जोड़ा, उनमें गति की शक्ति के साथ, जिसके पश्चात् स्वयं भगवान विष्णु उस शक्ति के अधिष्ठाता देवता के रूप में प्रकट हुए। (श्लोक ५८) फिर रक्तवाहिनियाँ और रक्त प्रकट हुए, जिसके पश्चात् नदियाँ उनकी अधिष्ठाता देवता बनीं, और फिर उदर

प्रकट हुआ। (श्लोक ५९) फिर भूख-प्यास उत्पन्न हुई, जिसके पश्चात् समुद्र आया; फिर हृदय प्रकट हुआ, और हृदय के पश्चात् मन। (श्लोक ६०) मन के पश्चात् चन्द्रदेव उसके अधिष्ठाता के रूप में तथा बुद्धि प्रकट हुई; जिसके पश्चात् बुद्धि के अधिष्ठाता ब्रह्मा आए। फिर अहंकार प्रकट हुआ, जिसके पश्चात् भगवान रुद्र आए; और सबसे अंत में चित्त — विवेक स्वयं — प्रकट हुआ, जिसके पश्चात् उसके अधिष्ठाता के रूप में क्षेत्रज्ञ, अन्तर्यामी, आए। (श्लोक ६१)

जो पाठक इस पूर्ण क्रम को एक साथ देखना चाहते हैं, उनके लिए अंगों और उनके अधिष्ठाता देवताओं को इस प्रकार सारणीबद्ध किया जा सकता है:

विराट पुरुष का अंग / क्षमता	अधिष्ठाता देवता
मुख / वाणी की इन्द्रिय	अग्नि
नासिका / घ्राण इन्द्रिय, प्राण	वायुदेव
नेत्र / दृष्टि इन्द्रिय	सूर्यदेव
कान / श्रवण इन्द्रिय	दिग्देवता
त्वचा / बाल, मूँछ, दाढ़ी	औषधियाँ और वनस्पतियाँ
जननेन्द्रिय / प्रजनन	जल के अधिष्ठाता देवता
गुदा / मलोत्सर्जन इन्द्रिय	मृत्युदेव
हाथ / ग्रहण करना	इन्द्र
पैर / गति	भगवान विष्णु
रक्तवाहिनियाँ / रक्त	नदियाँ
उदर / भूख-प्यास	समुद्र
हृदय / मन	चन्द्रदेव
बुद्धि	ब्रह्मा
अहंकार	भगवान रुद्र
चित्त (विवेक)	क्षेत्रज्ञ, अन्तर्यामी



भगवान नारायण की उपस्थिति से सक्रिय होकर, सात असंयुक्त तत्त्व देदीप्यमान ब्रह्माण्ड का निर्माण करते हैं, जिससे विशाल विराट पुरुष प्रकट होते हैं — उनका मुख, नेत्र, कान, हाथ और प्रत्येक अंग एक-एक करके प्रकट होता है, प्रत्येक के साथ तत्काल उसका अपना अधिष्ठाता देवता (श्लोक ५०-६१)।

केवल अन्तर्यामी ही उन्हें जगा सकते हैं

अध्याय का अंतिम भाग भी उसका सबसे शांत किन्तु नाटकीय भाग है: विफल प्रयासों की एक शृंखला के रूप में कही गई एक कथा, इस विषय में कि जीवन को जागृत करने की शक्ति वास्तव में किसके पास है।

जब उपर्युक्त समस्त देवता — अन्तर्यामी के अतिरिक्त — यद्यपि स्वयं सक्रिय थे, विराट पुरुष को सक्रिय करने में असमर्थ रहे, तो वे प्रत्येक अपने-अपने स्थान में पुनः प्रवेश करके उन्हें एक-एक करके जगाने का प्रयास करने लगे। (श्लोक ६२) अग्निदेव ने मुख में वाणी की इन्द्रिय के साथ प्रवेश किया — विराट पुरुष जागृत नहीं हुए। वायुदेव ने नासिका में घ्राण इन्द्रिय के साथ प्रवेश किया — वे जागने से इनकार करते रहे। (श्लोक ६३) सूर्यदेव ने नेत्रों में दृष्टि के साथ प्रवेश किया — वे उठने में असफल रहे। दिग्देवताओं ने कानों में श्रवण इन्द्रिय के साथ प्रवेश किया — उन्हें उद्वेलित नहीं किया जा सका। (श्लोक ६४) औषधियों ने त्वचा में बालों के साथ प्रवेश किया — वे हिलने-डुलने को तैयार नहीं हुए। जल के अधिष्ठाता देवता ने जननेन्द्रिय में प्रजनन शक्ति के साथ प्रवेश किया — वे जागृत होने से बचते रहे। (श्लोक ६५) मृत्युदेव ने गुदा में मलोत्सर्जन इन्द्रिय के साथ प्रवेश किया — उन्हें सक्रियता के लिए प्रेरित नहीं किया जा सका। इन्द्र ने हाथों में उनकी ग्रहण शक्ति के साथ प्रवेश किया — फिर भी वे स्पंदित नहीं हुए। (श्लोक ६६) स्वयं भगवान विष्णु ने पैरों में गति शक्ति के साथ प्रवेश किया — वे खड़े होने से इनकार करते रहे। नदियों ने रक्तवाहिनियों में रक्त के साथ प्रवेश किया — उन्हें हिलाया नहीं जा सका। (श्लोक ६७) समुद्र ने उदर में भूख-प्यास के साथ प्रवेश किया — फिर भी विराट पुरुष शांत ही रहे। चन्द्रदेव ने हृदय में मन के साथ प्रवेश किया — किन्तु वे तनिक भी नहीं जागे। (श्लोक ६८) ब्रह्मा ने भी हृदय में बुद्धि के साथ प्रवेश किया — फिर भी उन्हें उठने के लिए राजी नहीं किया जा सका। भगवान रुद्र ने भी हृदय में अहंकार के साथ प्रवेश किया — तो भी वे विचलित नहीं हुए। (श्लोक ६९)

और तब, अंततः:

चित्तेन हृदयं चैत्यः
क्षेत्रज्ञः प्राविशद्यदा ।
विराट् तदैव पुरुषः
सलिलादुदतिष्ठत ॥ ७० ॥

cittena hṛdayaṁ caityaḥ kṣetra-jñāḥ prāviśad yadā virāṭ tadaiva puruṣaḥ salilād udatiṣṭhata

अर्थ: जब अन्तर्यामी — चित्त अर्थात् चेतना के अधिष्ठाता देवता, क्षेत्रज्ञ — विवेक के साथ हृदय में प्रविष्ट हुए, तभी वह विशाल विराट पुरुष कारण-जल से उठ खड़े हुए। (तृतीय स्कन्ध, अध्याय २६, श्लोक ७०)

यह कल्पना करना कठिन है कि यह क्रम कितनी सावधानीपूर्वक रचा गया है। प्रत्येक अंग को उसकी क्षमता मिलती है; प्रत्येक क्षमता को उसका देवता मिलता है — यहाँ तक कि, उल्लेखनीय रूप से, स्वयं भगवान् विष्णु पैरों में प्रवेश करते हैं, और भगवान् रुद्र अहंकार में। फिर भी कुछ भी हिलता नहीं। अग्नि उन्हें जगा नहीं सकती। सूर्य उन्हें जगा नहीं सकता। यहाँ तक कि विष्णु भी, गति के अधिष्ठाता देवता के रूप में, उन्हें जगा नहीं सकते। केवल जब क्षेत्रज्ञ — अन्तर्यामी, बुद्धि के साक्षी के रूप में हृदय में विराजमान भगवान् — प्रवेश करते हैं, तभी वह विशाल देह अंततः उठती है। कपिल इस शिक्षा को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करते हैं, ताकि कोई पाठक इसे केवल ब्रह्मांड की उत्पत्ति की एक प्राचीन कथा मात्र न समझे:

जिस प्रकार प्राण, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि गहरी नींद में सोए हुए एक देहधारी जीव को अन्तर्यामी की उपस्थिति के बिना अपनी शक्ति से जगाने में असमर्थ रहते हैं, उसी प्रकार वे विराट पुरुष के मामले में भी असमर्थ रहे। (श्लोक ७१) इसलिए, भक्ति, वैराग्य और एकाग्र मन से प्राप्त आध्यात्मिक ज्ञान के द्वारा, मनुष्य को उस अन्तर्यामी का चिंतन करना चाहिए जो इसी देह में, यद्यपि उससे पृथक्, विद्यमान है। (श्लोक ७२)



प्रत्येक देवता — अग्नि, सूर्य, वायु, यहाँ तक कि गति की शक्ति के रूप में भगवान् विष्णु भी — विराट पुरुष के अंगों में क्रमशः प्रवेश करते हैं, फिर भी कोई उन्हें जगा नहीं सकता; केवल जब अन्तर्यामी विवेक के साथ हृदय में प्रवेश करते हैं, तभी वह विशाल रूप अंततः कारण-जल से उठ खड़ा होता है (श्लोक ६२-७२)।

तमस्मिन्प्रत्यगात्मानं
धिया योगप्रवृत्तया ।
भक्त्या विरक्त्या ज्ञानेन
विविच्यात्मनि चिन्तयेत् ॥ ७२ ॥

tam asmin pratyag-ātmānam dhiyā yoga-pravṛttayā bhaktyā viraktyā jñānena vivicyātmani cintayet

अर्थ: मनुष्य को उस अन्तर्यामी का, जिसे अपने ही सच्चे आत्मा के रूप में पहचाना जाता है, इसी देह में विद्यमान, योगयुक्त बुद्धि द्वारा, भक्ति, वैराग्य और आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा चिंतन करना चाहिए। (तृतीय स्कन्ध, अध्याय २६, श्लोक ७२)

श्रेणियों का अध्याय भक्ति के अध्याय में क्यों समाहित है

पहली दृष्टि में यह विचित्र लग सकता है कि यह अध्याय तत्त्वों की सघन वर्गीकरण-सूची लिए हुए उन अध्यायों के बीच में स्थित है जो भक्ति की तीव्रता से भरे हैं — अध्याय २४ में कर्दम का समर्पण-स्तोत्र, अध्याय २५ में भक्ति की महिमा, और आगे के अध्यायों में देवहूति के निरंतर प्रश्न। किन्तु कपिल स्वयं आरम्भ में ही इसका कारण बताते हैं: यह ज्ञान इसलिए है कि इसे जाना जाए, ताकि जीव, इन श्रेणियों को समझकर, अंततः प्रकृति के त्रिगुणों की जकड़न से मुक्त हो सके (श्लोक १)। सांख्य की यह गणना अपने आप में साध्य नहीं, बल्कि एक निदान-यंत्र है — श्रेणी-दर-श्रेणी यह सीखने का एक तरीका कि मनुष्य क्या नहीं है, ताकि अंततः वह प्रकट हो सके जो वह वास्तव में है। और अध्याय की अंतिम छवि इस सम्बन्ध को स्पष्ट कर देती है: वही अन्तर्यामी जिसकी उपस्थिति ने सृष्टि के प्रारम्भ में विशाल, निश्चल विराट पुरुष को जगाया, यह अध्याय बल देकर कहता है, ठीक उसी स्थान — हृदय — में विराजमान है जहाँ आज ये शब्द पढ़ रहा प्रत्येक देहधारी प्राणी है। ब्रह्मांड-विज्ञान और भक्ति अंततः एक ही सत्य को दो दिशाओं से वर्णित कर रहे हैं।

इस अध्याय की मुख्य शिक्षाएँ

१. बंधन भ्रांत पहचान से आरम्भ होता है, आत्मा में किसी वास्तविक परिवर्तन से नहीं। पुरुष प्रकृति के आकर्षण में स्वयं को “भूलकर” अपने सच्चे स्वभाव में कुछ भी नहीं खोता — वह मात्र उसके कर्मों को अपना मान लेता है, और सुख, दुःख, जन्म तथा मृत्यु का समस्त अनुभव उसी एक भूल से उत्पन्न होता है (श्लोक ३-८)।
२. सृष्टि एक समझ में आने वाले, व्यवस्थित क्रम का अनुसरण करती है — यह अराजकता नहीं है। प्रकृति से महत्तत्त्व, महत्तत्त्व से त्रिविध अहंकार, और अहंकार से तन्मात्राओं के माध्यम से स्थूल तत्त्वों और इन्द्रियों तक, इस अध्याय में प्रत्येक सिद्धांत एक निश्चित पूर्ववर्ती से एक निश्चित क्रम में उत्पन्न होता है (श्लोक १९-४९)।
३. सबसे अमूर्त ब्रह्मांडीय श्रेणियाँ भी, अपने मूल में, भगवान के ही रूप हैं। महत्तत्त्व वासुदेव है; अहंकार संकर्षण है; मन अनिरुद्ध है; बुद्धि प्रद्युम्न है — पदार्थ का विकास कभी भी भगवान की उसके भीतर की अपनी उपस्थिति से पृथक नहीं है (श्लोक २१, २५, २८, २९)।

४. पृथ्वी, तत्त्वों में अंतिम और सबसे स्थूल, विरोधाभासी रूप से सबसे अधिक धारण करती है, सबसे कम नहीं। क्योंकि प्रत्येक तत्त्व अपने कारण के गुणों को विरासत में लेता है, अकेली पृथ्वी अपने भीतर शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध कुछ न कुछ एक साथ धारण करती है — सघनता निर्धनता के समान नहीं है (श्लोक ४९)।

५. प्रत्येक अंग दिया जा सकता है, और फिर भी उस एक चीज़ के बिना कुछ भी नहीं हिलता जो उसे जीवन देती है। अग्नि, सूर्य, वायु, समुद्र, यहाँ तक कि गति के अधिष्ठाता के रूप में स्वयं भगवान विष्णु भी — कोई भी विराट पुरुष को नहीं जगा सकता; केवल हृदय में प्रवेश करने वाले अन्तर्यामी सफल होते हैं, और यही सत्य प्रत्येक सोए हुए देहधारी आत्मा के लिए भी है (श्लोक ६२-७१)।

६. इस समस्त शिक्षा का समापन एक ही व्यावहारिक निर्देश पर होता है। इकहत्तर श्लोकों में पच्चीस श्रेणियों को खोलने के पश्चात्, कपिल का वास्तविक निष्कर्ष सरल है: भक्ति, वैराग्य और ज्ञान के द्वारा, इसी देह में विद्यमान अन्तर्यामी का चिंतन करो (श्लोक ७२)।

एक भक्तिमय चिंतन

इस अध्याय के आकार में कुछ ऐसा है जो शांतिदायक है, उसकी अपरिचित संस्कृत शब्दावली और कारण-कार्य की लम्बी शृंखलाओं के बीच भी। इतना सूक्ष्म, इतना जानबूझकर व्यवस्थित ब्रह्मांड — अहंकार से मन, ब्रह्मांडीय बुद्धि से अहंकार, भगवान की अपनी शक्ति से एक अन्यथा निष्क्रिय प्रकृति को झकझोरती हुई ब्रह्मांडीय बुद्धि — किसी दुर्घटना द्वारा शासित ब्रह्मांड नहीं है। और अध्याय की अंतिम कथा कुछ और भी व्यक्तिगत प्रस्तुत करती है: किसी प्राणी के पास चाहे कितनी भी क्षमताएँ हों, चाहे कितने भी अंग, इन्द्रियाँ और शक्तियाँ पहले से सक्रिय और कार्यरत हों, अन्तर्यामी की उपस्थिति के बिना इनमें से कुछ भी वास्तविक जीवन नहीं बनता। यह निराशाजनक विचार नहीं, बल्कि मुक्तिदायक है। इसका अर्थ है कि किसी के अपने जीवन में जो कुछ भी रुका हुआ, अजाग्रत या सोया हुआ प्रतीत होता है, वह प्रयास की विफलता नहीं है — सूर्य, वायु और अग्नि भी विराट पुरुष को नहीं जगा सके, चाहे उनमें से प्रत्येक ने कितनी निष्ठा से अपने स्थान में प्रवेश किया हो। जिसकी आवश्यकता थी वह विद्यमान क्षमताओं से अधिक प्रयास नहीं था, बल्कि उस एक वस्तु की उपस्थिति थी जो उन्हें जीवन दे सके। इस अध्याय का निमंत्रण यह है कि केवल इन्द्रियों और मन के माध्यम से स्वयं को जगाने का प्रयास बंद करें, और इसके बजाय उस एक की ओर ध्यान मोड़ें जो पहले से ही, शांतिपूर्वक, हृदय में विराजमान है।

एक दैनिक भक्ति अभ्यास

आज, इस अध्याय द्वारा वर्णित कुछ साधारण क्षमताओं को लीजिए — देखने, सुनने, स्पर्श करने, स्वाद लेने, सूँघने, अपने हाथ-पैर हिलाने की क्षमता — और एक-एक करके ध्यान दीजिए कि इनमें से प्रत्येक पहले से ही कार्यरत है, पहले से ही सक्रिय है, बिना आपके इसे बनाए या अर्जित किए। फिर, शांतिपूर्वक और बिना किसी चिंता के, वही प्रश्न पूछिए जो यह अध्याय विराट पुरुष के विषय में पूछता है: वास्तव में इन सब को जीवन कौन देता है? कुछ क्षण शांति से बैठिए, और प्रयास या क्रियाकलाप के माध्यम से जागृति की भावना उत्पन्न करने के बजाय, केवल ध्यान को भीतर, हृदय की ओर मोड़िए, और धीरे से दोहराइए: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” इस अभ्यास को स्वयं उस “भक्ति, वैराग्य और ज्ञान” का एक कार्य बनने दीजिए, जिसे श्लोक ७२ उस अन्तर्यामी के चिंतन का साधन बताता है, जो अभी इसी क्षण, इन शब्दों को पढ़ने वाली इन्द्रियों से भी अधिक निकट है।

निष्कर्ष

तृतीय स्कन्ध का छब्बीसवाँ प्रवचन पाठक को पूर्ववर्ती अध्यायों की भक्तिमय भावना की ऊँचाई से सांख्य दर्शन की सावधानीपूर्वक संरचना की ओर ले जाता है — और अपनी ही संरचना से यह दिखाता है कि दोनों वास्तव में कभी पृथक् नहीं थे। प्रकृति और पुरुष की प्रकृति के विषय में देवहूति के एकल प्रश्न के उत्तर में, भगवान कपिल भौतिक सृष्टि के सम्पूर्ण विकासात्मक क्रम को खोलते हैं: चौबीस श्रेणियाँ और पच्चीसवें के रूप में काल, देदीप्यमान महत्तत्त्व की उत्पत्ति, त्रिविध अहंकार और भगवान के अपने शाश्वत रूपों के साथ उसकी पहचान, पाँच सूक्ष्म तत्त्वों का पाँच स्थूल तत्त्वों और इन्द्रियों में क्रमबद्ध विकास, और अंततः ब्रह्माण्ड तथा विशाल विराट पुरुष की रचना, जिनका प्रत्येक अंग अपने ही अधिष्ठाता देवता को प्राप्त करता है फिर भी वे तब तक निश्चल रहते हैं जब तक अन्तर्यामी अकेले हृदय में प्रवेश नहीं करते। जो एक ब्रह्मांड-विज्ञान के पाठ के रूप में आरम्भ होता है, वह अपने अंतिम श्लोक में चिंतन के पाठ के रूप में समाप्त होता है — क्योंकि वही अन्तर्यामी जिसने अकेले सृष्टि के प्रारम्भ में सोए हुए ब्रह्मांड को जगाया, यहाँ उस एक सत्य के रूप में नामित है जिसे प्रत्येक देहधारी आत्मा को भक्ति, वैराग्य और ज्ञान के माध्यम से, अपने भीतर विराजमान खोजने के लिए आमंत्रित किया गया है।

श्रीमद्भागवत का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ एवं आभार

- प्राथमिक संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), तृतीय स्कन्ध, प्रवचन २६, पृष्ठ २५१/२५२-२५८।
- शृंखला: श्रीमद्भागवत विज्डम • बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पंडित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन और अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी और लिप्यंतरण में दिखाए गए हैं तथा उनके अर्थ सारांश के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरंतर अनुवाद या टीका की प्रतिलिपि नहीं है। किसी भी प्रकाशक के साथ कोई संबद्धता या समर्थन निहित नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-3-chapter-26-evolution-of-mahat-tattva-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्डम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट